The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 8 | August 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर के नैतिक दर्शन की प्रासंगिकता

रोशन कुमार रंजन

शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, दी०द०उ०गो० वि० वि० गोरखपुर, ranjanvicky1234@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.17130255

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 26-08-2025

Published: 10-09-2025

Keywords:

नैतिकता, समानता, स्वतंत्रता बंधुत्व, सामाजिक न्याय, मानव तर्क, करुणा, न्याय की भावना

ABSTRACT

डॉ० बी० आर० अम्बेडकर की नैतिक दर्शन की अवधारणा उनके सामाजिक न्याय, मानव अधिकारों, और समानता पर आधारित विचारों से गहराई से जुड़ी हुई है। समकालीन नैतिकता के सन्दर्भ में अम्बेडकर की सोच को समझने के लिए उनके दर्शन, समाज के प्रति दृष्टिकोण, और धर्म के पुनर्परिभाषण को देखना आवश्यक है। अम्बेडकर ने नैतिकता को धर्म या किसी दैवी आदेश से उत्पन्न मानने के बजाय, उसे मानव तर्क, करुणा और न्याय की भावना से जोड़कर देखा। उनके अनुसार, नैतिकता का उद्देश्य सामाजिक जीवन को इस प्रकार संगठित करना है कि उसमें समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व कायम रह सके। अम्बेडकर की नैतिकता की अवधारणा का मूल आधार है सामाजिक न्याय। वे मानते थे कि नैतिकता वही है जो दलितों, पिछड़ों और महिलाओं को गरिमा प्रदान करे। उनके लिए नैतिकता का अर्थ केवल आचरण की शुद्धता नहीं, बल्कि सामाजिक ढांचे में सुधार भी था। समकालीन नैतिकता, जो आज मानवाधिकार, समानता, लैंगिक न्याय, और सामाजिक समावेशन जैसे मूल्यों पर आधारित है, उसमें अम्बेडकर के विचार अग्रदूत साबित होते हैं। उनके विचार आज के लोकतांत्रिक और संवैधानिक मूल्यों से मेल खाते हैं। डॉ० बी० आर० अम्बेडकर की नैतिकता की अवधारणा समकालीन समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। उन्होंने नैतिकता को केवल धार्मिक या व्यक्तिगत आचरण का विषय न मानकर, उसे सामाजिक न्याय और समानता की दृष्टि से देखा। उनके विचार आज भी नैतिक मूल्यों की समझ को गहराई प्रदान करते हैं।

परिचय –

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की समस्या कोई अचानक उत्पन्न हुई स्थिति नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक प्रक्रियाओं का परिणाम है। सार्वजनिक हित की भावना के स्थान पर जब

व्यक्तिगत लोभ और सत्ता की लालसा केंद्र में आ जाती है, तब समाज में नैतिकता का ह्रास, संवेदनाओं का क्षरण, और विकृतियों का विस्फोट अपरिहार्य हो जाता है। यही वह प्रक्रिया है, जिसने एक कुरूप, विद्रूप और नैतिकता–विहीन समाज को जन्म दिया। प्रारंभिक सभ्यताओं में संसाधनों पर अधिकार तथा श्रम विभाजन स्वाभाविक प्रतीत हुआ, लेकिन धीरे–धीरे कुछ वर्गों ने अपने विशेषाधिकारों को स्थायी बनाने के लिए धर्म, संस्कृति और परंपरा का सहारा लिया। इसने सामाजिक असमानता को "ईश्वरीय इच्छा" बना दिया। दबंग और शोषक वर्ग ने जन–साधारण को नियंत्रित करने के लिए आध्यात्मिक और धार्मिक मिथकों की रचना की। लोग वास्तविक दुनिया के कष्टों का विरोध करते थे, उन्हें काल्पनिक स्वर्ग का लालच दिया गया। जो प्रभावित नहीं हुए, उन्हें अगले जन्म में सुख–सुविधा की आशा में उलझाया गया। जो फिर भी न माने, उन्हें राक्षस, काफिर, शैतान घोषित कर, उनका बहिष्कार, हत्या या गुलामी कर दी गई। समता, स्वतंत्रता, न्याय एवं बंधुता के नारे लगते रहे साथ ही साथ मानव द्वारा मानव के विरुद्ध शोषण, दमन, उत्पीड़न, अन्याय एवं अत्याचार होते रहे। धर्म एवं नैतिकता के ऐसे मापदण्ड निर्मित किये गये कि अत्याचारी लोग मर्यादा पुरुषोत्तम हो गये। आक्रमणकारी लोग शासक, मार्गदर्शक और पूजनीय देवता कहलाने लगे। करोडों लूटकर लाखों का दान करने वाले लुटेरे, महान दानदाता कहे गये। गरीबों की हत्या की साजिश के तहत कमरतोड़ मँहगाई बढ़ाकर गरीबों को मरने के लिये मजबूर करने वाले, कभी हत्यारे नहीं कह गये। गरीबों का खून चूसकर दौलत मंद बन चुके मुनाफाखोर लोग कभी लुटेरे नहीं माने गये। समाज में ऊँच–नीच फैलाने वाले लोग मनुष्यों में श्रेष्ठ माने गये, जो मनुष्य कहलाने के भी हकदार नहीं थे वे 'भगवान' बन गये। साम्प्रदायिकता फैलाने वाले लोग धार्मिक कहे जाते रहे हैं।

मानवता के विरूद्ध हो रहे अत्याचारों को सहन करने की प्रेरणा देने वाले धर्मगुरू हो गये। धार्मिक आडम्बर, पोगापंथी आदि कर्मकाण्ड करके धन कमाने वाले साधु कहलाने लगे। बहुसंख्यक मानव समाज के ऊपर दासता, गरीबी, तंगहाली, भुखमरी, बेरोजगारी, बेगारी बेकारी थोपने वालों की साजिशों को राजनीति समझा जाता रहा है। बहुसंख्यक समाज में अशिक्षा फैलाने एवं गुमराह करने वाले गुरू कह जाते रहे और अहित करने वाले ऐसे लोग पुरोहित भी कहे जाते रहे। मानव का तिरष्कार तथा गुह–गोबर, लिंग आदि की पूजा करने वाले भी भक्त कहे जाते रहे।

विज्ञान की कसौटी पर झूठ सिद्ध हो चुकी मान्यताओं को ढोने वाले आस्तिक तथा विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुकी सच्चाई में विश्वास रखने वाले सत्य साधकों व प्रचारकों को नास्तिक कहकर उपेक्षित अपमानित, प्रताड़ित व दमित किया जाता रहा। सत्यसाधकों को धर्मद्रोही तथा झूठ एव कल्पनाओं में जीने वाले ढोंगियों, पाखण्डियो एवं वाह्य आडम्बरधारियों को धार्मिक समझने की अवधारणा आज भी जीवित है।

धर्म अथवा नैतिकता के किसी भी ग्रन्थ को प्रमाणिक मानने से पहले यह समझना बहुत जरूरी है कि– वर्गों वाले समाज में विद्वान एवं दार्शनिक भी वर्गनिरपेक्ष नहीं होते। अतः उनके लिखे हुए ग्रन्थ वर्गनिरपेक्ष नहीं हो सकते। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामया" का नारा देने वाले भी अपने वर्ग के पक्ष में शास्त्रों की रचनायें करते हैं।

अतः धार्मिक एवं नैतिक शास्त्रों की नीतियाँ भी वर्गनिरपेक्ष नहीं होती हैं। प्रत्येक रीति–नीति व परम्परा में दबंग वर्ग की पक्षधरता स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरण के तौर पर पुरुष वर्चस्व वाले समाज में एक पुरुष द्वारा सैकड़ों स्त्रियों के साथ विवाह करने की छूट थी। धर्म ने इसका विरोध नहीं किया। हिन्दू समाज में सती प्रथा नाम की बुराई थी। इस प्रथा के तहत औरतों को उनके पति की चिता पर सदियों तक जलाया जाता रहा परन्तु धर्मशास्त्रों ने इसका विरोध नहीं किया। समाज में पुरुष दबंग वर्ग के रूप में था। धर्मशास्त्र इस दबंग वर्ग का पक्षधर था। अतः इस प्रथा का विरोध करने की बजाय धर्मशास्त्रों में नीतियाँ बनायी गयी कि सती होने के लिये क्या–क्या सामग्री जरूरी है, सती स्त्री का कपड़ा किस रंग का हो, उसका श्रृंगार कैसा हो, चिता में कैसे बैठना है, कौन सा मंत्र पढ़ना है, किसका ध्यान करना है? आदि प्रावधान बनाये मगर सती–प्रथा गलत है, यह नारी पर अत्याचार है ऐसा किसी धर्मशास्त्र में नहीं लिखा गया। यदि दबंग वर्ग के लोग भोले–भाले व कमजोर लोगों पर हमला करके उन्हें गुलाम बनायें, उनको बाड़ों में जानवरों से भी बदतर हालात में बाँध कर रखें, उन्हें वशीभूत करने के लिये भूख–प्यास से तड़पायें, उन पर कोड़े बरसायें, उनसे जबरन काम करवायें, अपनी जरूरत के अनुसार उन गुलाम बनाये गये लोगों को खरीदें और बेचें, उन्हें कुत्तों से भी बदतर जिन्दगी जीने को मजबूर करें, जरूरत पड़ने पर उन्हें मार भी डालें। यह सब मानव द्वारा मानव के ऊपर किया जाने वाला घोर अत्याचार है। आज से सैकड़ों साल पहले दास–प्रथा के दौरान यह सब अत्याचार हो रहा था और सभी धर्मशास्त्र इस प्रथा का विरोध करने की बजाय दासों के कर्तव्य और स्वामी के अधिकारों का निर्धारण कर रहे थे। दुनिया के अन्य मुल्कों की बात छोडिये संभ्रान्त कहे जाने वाले अमेरिका में ही भेड़–बकरियों से भी बदतर स्थिति में दास और दासियों को पाला जाता था, पशुओं की तरह उनकी खरीद–फरोख्त होती थी। उनको बात–बात में कोड़े मारे जाते थे तथा उन पर अनेकों तरह के अमानवीय अत्याचार किये जाते थे। कुछ ऐसे भी स्वामी होते थे जो दासियों के साथ बलात्कार भी करते थे तथा उनसे उत्पन्न सन्तानों को बाजार में बेच देते थे। अब्राहम लिंकन से पूर्व ऐसे कई अमेरिकी राष्ट्रपति हुए जो दासों का व्यापार करते थे। एक राष्ट्रपति ने तो दासी से पैदा हुई अपनी बेटियों को महंगे दामों में श्सार्वन वेश्या के हाथ बेचा था। उसके इस कृत्य को उस समय कोई बुरा भी नहीं माना था क्योंकि उस समय लोग दास प्रथा को अनैतिक नहीं मानते थे। धर्म शास्त्र भी इसे अनैतिक नहीं मानते थे। धर्मशास्त्रों ने तो हमेशा दबंग वर्ग के हितों का समर्थन किया है।

आज के दौर में पूंजीपति, 'दबंग वर्ग' है। इस वर्ग की दबंगई चरम अवस्था में है अतः दबंग वर्ग के हितों को ध्यान में रखते हुए धर्मशास्त्रों एवं नैतिकशास्त्रों में मुनाफाखोरी को जायज ठहराया जा रहा है। इसके पीछे कारण वही है कि दबंग वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर ही सारी नीतियाँ निर्धारित होती हैं। धर्मशास्त्र कभी दबंग वर्ग के हितों के विरुद्ध नहीं रहे हैं। कभी गरीबों के हित में नीतियाँ बन भी गयी तो उन नीतियों को लागू करने पर जोर नहीं दिया जाता। यही कारण है कि प्रायः गरीबों के हिस्से का अधिकतर बजटखर्च नहीं हो पाता लिहाजा वापस सरकार के खजाने में चला जाता है। इसी तरह धर्मशास्त्रों में भी गरीबों के हित में बनायी नीतियों पर जोर कम दिया जाता है। अतः धर्मशास्त्रों व नीतिशास्त्रों को आँख मूँद कर नैतिकता की कसौटी नहीं मान लेना चाहिये। किसने कितने यज्ञ करवाये, कितना पूजा–पाठ किया, कितने पशुबलि और कितने नरबलि दिये, ईश्वर की चापलूसी

में कितने गीत–भजन रचे और गाये, कितने प्रवचन किये, कितना ध्यान, कितना स्नान, कितनी बार हज, तीर्थ एवं व्रत किया, कितनी बार प्रार्थना किया, कितने रोजे रखे, कितनी बार नमाज पढ़ी, सजदा किया, कितना जकात व खैरात बॉटा? इन सवालों पर नैतिकता को नहीं कसा जाना चाहिये ये सब नैतिकता की कसौटी नहीं है। दाढी–जटा बढ़ाना, तिलक लगाना या अन्य किसी प्रकार के मेष बनाना नैतिकता का प्रमाण नहीं है। नैतिकता की कसौटी है– सार्वजनिक हित।

नैतिकता इस बात से प्रमाणित होती है कि हमारे चिन्तन, वाणी एवं कर्म में कितना सार्वजनिक हित है। हालाँकि धर्म–शास्त्रों में सार्वजनिक हित का जिक्र जरूर आता है परन्तु इसे प्रचारित–प्रसारित कम ही किया जाता है और व्यवहार में भी कम ही लाया जाता है। प्रचार–प्रसार व व्यवहार में उन कर्मकाण्डों, वाह्य आडम्बरों, पाखण्डों, पोंगापंथों, रूढ़ियों एवं परम्पराओं को अधिक लाया जाता है जिनसे. मुल्लों–मौलानाओं, पादरियों–फरीसियों, पुरोहितों, पंडों, पुजारियों एवं महन्तों को फायदा पहुँचता है।[1]

सन् 1891 से 1956 तक के 65 वर्षों के अपने समस्त जीवनकाल में डॉ० भीमराव अम्बेडकर बिना थके दलितों, पीड़ितों, आदिवासियों एवं महिलाओं के लिये मानवीय गरिमा एवं अधिकारों के लिये अजेय रहे। वे अपने व्यक्तित्व की क्षमता, अपरिमेय शक्ति एवं योग्यता के बल पर बीसवीं शताब्दी के सुधारकों में अग्रिम पंक्ति पर रहे।

आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय को प्रतिष्ठापित करने, दलित वर्गों के उत्थान के प्रति वचनबद्ध रहने एवं उनके जीवन को सामान्य रूप से जीने योग्य अधिकार दिलाने वाले पुरुष के रूप मे डॉ० भीमराव अम्बेडकर का नाम अग्रणी महापुरुष के रूप में लिया जाता है और आगे भी लिया जाता रहेगा।

डॉ० अम्बेडकर एक दलित एवं शोषित परिवार में जन्में अवश्य, किन्तु उस अभिशाप को आजीवन ढोने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने बचपन से ही उस अवस्था के विरूद्ध विद्रोह किया और स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता की लड़ाई लड़ते रहे। उनका जीवन इस बात को प्रमाणित करता है कि अस्पृश्य, नीच जाति, सुविधाहीन और निर्धन होना कोई बाधायें नहीं हैं तथा व्यक्ति इन बाधा और व्यवधानों के होते हुए भी अपना पूर्ण विकास कर सकता है। 14 अप्रैल, 1891 को मध्यप्रदेश के महूँ स्थान पर महार जाति के साधारण व्यक्ति रामजी सकपाल के घर उनका जन्म हुआ था। उस समय किसी ने भी यह कल्पना नहीं की होगी कि इस घर में जन्मा बालक देश का एक प्रसिद्ध समाज सुधारक, शिक्षाविद्, विधि और इतिहास का विद्वान् बनेगा।

डॉ० अम्बेडकर का जीवन काल भारत में नये मूल्यों की स्थापना, नवजागरण तथा नये चिन्तन के उदय का काल था। विदेशी शासन और दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष तथा उस संघर्ष के बाद मिली आजादी को मजबूत करने की चुनौती देश के सामने थी। महात्मा गांधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस आदि महान् व्यक्ति उस समय देश के क्षितिज पर उदित थे, जिनके प्रकाश से सारा देश आलोकित हो रहा था। डॉ० अम्बेडकर राजनीतिक स्वतंत्रता के लिये स्वतंत्रता संघर्ष का भार अन्य नेताओं पर छोड़कर स्वयं समाज सुधार के कार्य में लग गये। उनके

समर्पित जीवन ने उनको शोषितों का प्रतीक बना दिया और उन्होंने घोषणा की कि दलित वर्ग जिसमें मैं पैदा हुआ, सदियों से दासता का जीवन बिता रहा है, उसे इस दासता से मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। यदि मैं ऐसा नहीं कर सका तो गोली मारकर अपने जीवन का अन्त कर लूँगा। उनकी आकांक्षा थी कि–"मैं उन पददलित लोगों की सेवा और हित में मरूँ, जिनके बीच मेरा जन्म हुआ, पालन–पोषण हुआ और अब मैं जिनके बीच रह रहा हूँ।"[2]

डॉ० अम्बेडकर एक ओर दलितों की मुक्ति और सामाजिक समानता चाहते थे, वहीं दूसरी ओर वे यह भी चाहते थे कि भारत एक मजबूत, शक्तिशाली एवं महान राष्ट्र बने। उन्होंने इन दोनों दिशाओं में कार्य किया, किन्तु अगर इन दोनों में कभी भी प्राथमिकता का सवाल पैदा हुआ, तो उन्होंने बिना किसी लाग लपेट के पहले दलितोद्धार, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय की स्थापना सम्बन्धी कार्य को वरीयता देने पर जोर दिया। उनकी यह स्पष्ट मान्यता थी कि यदि कभी उनके हित और अनुसूचित जातियों के हित में टकराव हुआ तो वे अनुसूचित जातियों के हित को प्राथमिकता देंगे और यदि देश के हित और दलित वर्ग के हित में प्राथमिकता की बात आये या टकराव हो तो वे दलित वर्ग के हित को प्राथमिकता देंगे।[3]

माण्टेग्यू–चेम्सफोर्ड 1919 में सुधारों के अधीन पहली बार कुछ प्रान्तों में दलित वर्गों के हितों को प्रतिनिधित्व देने के लिए कुछ सदस्यों को मनोनीत करने का प्रावधान रखा गया। इसके लिए डॉ० अम्बेडकर ने 27 जनवरी, 1919 को मताधिकार सम्बन्धी साउथवरो समिति के समक्ष लिखित साक्ष्य प्रस्तुत किया। इस ज्ञापन में उन्होंने जनप्रतिनिधि सरकार बनाये जाने की दशा में दलितों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिये जाने की माँग की थी।[4] डॉ० अम्बेडकर ने अपने ज्ञापन में उन समस्त बाधाओं का सिलसिलेवार जिक्र किया है जिनका दलित वर्ग शिकार रहा है। उन्होंने बताया कि वे व्यापार नहीं कर सकते तथा नौकरी में उनके लिए जगह नहीं है। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के दौरान दलित वर्ग के लिए सेना में भर्ती होने का मार्ग खुला था, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने दलित वगों को सेना में भर्ती करना बन्द कर दिया, क्योंकि मराठे लोग सेना में भर्ती होने लगे।[5] उनके पिताजी ने ब्रिटिश सरकार से महारों को पुनः सेना में भर्ती किये जाने की जोरदार बकालती की, जिसके परिणाम स्वरूप महार रेजीमेंट की स्थापना हुई।

डॉ० अम्बेडकर ने दलितों पर हो रहे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने तथा उनके न्यायोचित हितों को लोगों के सामने मीडिया के सहारे कारगर रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से एक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन साहूजी महाराज की आर्थिक सहायता से 31 जनवरी, 1920 से 'मूकनायक' नाम से शुरू किया। इस मराठी पाक्षिक पत्र का विज्ञापन लोकमान्य तिलक के पत्र ' केशरी' ने निकालने से इंकार कर दिया था।[6]

डॉ० अम्बेडकर ने 21 मार्च, 1920 को कोल्हापुर राज्य के मानगाँव में अस्पृश्यों के एक सम्मेलन की अध्यक्षता की। इस सम्मेलन में उपस्थित हजारों लोगों के समक्ष साहू जी महाराज ने कहा,"डॉ० अम्बेडकर के रूप में आपको

आपका मुक्तिदाता मिल गया है। मुझे विश्वास है कि वह आपकी बेड़ियाँ तोड़ देगा। यही नहीं मेरा अन्त:करण कहता है कि एक समय आयेगा जब डॉ० अम्बेडकर अखिल भारतीय प्रसिद्धि और प्रभाव वाले एक अग्रणी नेता के रूप में चमकेंगे।[7]" मूकनायक के पहले सम्पादकीय में लिखा गया कि वर्तमान समाचार पत्र केवल कुछ विशिष्ट जाति के हितों की रक्षा कर रहे हैं। अस्पृश्यों एवं दलितों के ऊपर असमानताजनक नियम लागू हैं। भारत को स्वतंत्र होने से पूर्व आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में समानता स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। बिना इसके आजादी का अर्थ मात्र सत्ता का हस्तांतरण होगा।

निष्कर्ष–

डॉ० भीमराव अम्बेडकर का नैतिक दर्शन सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित है। उनका विश्वास था कि समाज की प्रगति तभी सम्भव है जब उसमें हर व्यक्ति को गरिमा और अवसर की समानता प्राप्त हो। उन्होंने नैतिकता को केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित न मानकर उसे सामाजिक ढांचे और मानव संबंधों में लागू करने पर बल दिया। भीमराव अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था, छुआछूत और सामाजिक विषमता को नैतिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण ठहराया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि धर्म का मूल उद्देश्य नैतिकता की स्थापना होना चाहिए, न कि सामाजिक असमानताओं को वैध ठहराना। इसी कारण उन्होंने बौद्ध धम्म को अपनाया और करुणा, अहिंसा तथा मानव कल्याण को नैतिक जीवन का आधार माना।

आज के संदर्भ में अम्बेडकर का नैतिक दर्शन अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक समाज में असमानता, भेदभाव, हिंसा और असहिष्णुता जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। ऐसे में उनके विचार हमें शिक्षा, संगठन और नैतिक संघर्ष के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का मार्ग दिखाते हैं। बाबा साहब का नैतिक दर्शन केवल वंचित वर्गों के लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के लिए मार्गदर्शक है। यह हमें लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित न्यायपूर्ण समाज की ओर प्रेरित करता है।

संदर्भ सूची

1. रजनीश, "नैतिकता (वैज्ञानिक चिंतन एवं विश्लेषण)" पृष्ठ संख्या– 19
2. आर.जी. सिंह, "डॉ० अम्बेडकर के सामाजिक विचार", भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1991 पृष्ठ– 5
3. मधुलिमये, "बाबा साहेब अम्बेडकर एक चिंतन", दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, 2002पृष्ठ–19
4. बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर सम्पूर्ण वा[3]मय, खण्ड–2, नई दिल्ली, डॉ० अम्बेडकर प्रतिष्ठान,भारत सरकार, 1998पृष्ठ– 22
5. बी० आर० अम्बेडकर, एनिहिलेशन ऑफ कास्ट्स, वही, पृष्ठ 100–102

6. ए.एस. राजशेखराचार्य, "बी० आर० अम्बेडकर द क्विस्ट फॉर सोशल जस्टिस", नई दिल्ली,उप्पल पब्लिशिंग हाउस, 1989
7. कीर, धनंजय "डॉ० अम्बेडकर–लाइफ एंड मिशन", बम्बई, पापूलर प्रकाशन, 1961 पृष्ठ– 42